



शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्म समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)

3049-2890 (Print)

IIFS Impact Factor-5.375

Vol.-3; issue-4 (Oct.-Dec.) 2026

Page No- 14-16

©2026 Shodhaamrit

<https://shodhaamrit.gyanvividha.com>

Author's :

डॉ. राकेश रामावत

वरिष्ठ शिक्षक (अंग्रेजी),

रा.उ.मा.वि. पडासला कला, बिलाड़ा (जोधपुर)

हिन्दी उपन्यासों में निरूपित विहग वर्णन

शोध सारांश —आधुनिक हिन्दी उपन्यास के व्यापक फलक पर लेखकों ने विभिन्न प्रसंगों में पक्षियों से संबंधित पारंपरिक लोकमान्यताओं, काव्यरुद्धियों, कहावतों—मुहावरों एवं कहीं—कहीं पर पक्षी व्यवहारों का यत्किंचित् वैज्ञानिक दृष्टि से भी उल्लेख किया है। कमलेश्वर कृत 'अनबीता व्यतीतः' उपन्यास तो अपने आप में ही पक्षी संरक्षण एवं पर्यावरण विमर्श का उदात्त नमूना है। इस शोधपत्र में उपन्यासकारों द्वारा प्रस्तुत विहग—वर्णन के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक—सांस्कृतिक एवं आर्थिक आयामों का गहराईपूर्वक अनुशीलन किया गया है।

कुंजीशब्द — कान्हड़देव, मैनचिड़ी, ढेलड्यां, पुण्डकी, फूलसूँधीचिरई, काकभुशुण्डि।

हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के विस्तृत कलेवर में यथाप्रसंग कतिपय पक्षियों के उल्लेख किए हैं। हिन्दी उपन्यास जगत में पंछी पर आधारित धीर्शक वाले कुछ उपन्यास भी विद्यमान हैं यथा 'जहाज का पंछी' (इलाचंद जोषी, 1955), 'मानस का हंस' (अमृतलाल नागर, 1972) खंजन नयन (अमृतलाल नागर, 1981) एवं 'चिड़ियाघर' (गिरिराज किशोर) आदि।¹ यद्यपि इन उपन्यासों की अंतर्वस्तु मानव—समाज पर ही केंद्रित है तथापि रचनाकारों ने धीर्शक में पक्षी का उल्लेख करना उचित माना है।

कतिपय आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में पक्षियों और मनुष्य के मध्य पारंपरिक आदान—प्रदान और ऐतिहासिक साहचर्यभाव का मर्मस्पर्शी उल्लेख किया गया है। पुरुषोत्तम पोमल (जालौर) के उपन्यास 'षहजादी फीरोजा' में जालौर के महाराजा कान्हड़देव स्वयं अपने महल के पिछवाड़े विषाल उपवन—वाटिका में प्रतिदिन मोर—कबूतर आदि पक्षियों को चुग्गा डालने जाते हैं। इस हिन्दी उपन्यास को इस शोधपत्र लेखक ने राजस्थानी भाषा में अनूदित किया है। यहाँ मूल उपन्यास के राजस्थानी अनुवाद का यह अंश द्रष्टव्य है:—

“भाखर वीकाखेरु ई पवित्र प्रभातियां गावण लागा। महाराज कान्हड़देव आपरै नितरी आदत मुजब मैहलां रै पिछवाड़े कोनी पंखेरुवां नै दाणौ—चुगौ—पाणी घालण सारु निकळ्या। पांखी—पंखेरु महाराज सूं घणौ नेह—लगाव राखता, बै बुलावतां जणै ई नेड़ा आ ज्यावता, कीं कठैई डरै जैड़ी बात ई कोनी। कबूडा, चिड़—कल्यां, सुगा, मैनचिड़ी मोर्या—ढेलड्यां, कोयलड़ी, अर केई जात—भांत रा पाखी—पंखेरु उठे चुगै खातर सदीव आय दूकता हा। घणै लाड — प्रेम सूं दाणौ चुगता पांणी पीवता अर अठी—उठी फुदकता—रमता पाछा फुर्र—करता उड— ज्यावता। कारण औ क बां पंखेरुवां नै इण बात रौ धीरजौ हौ क बै पाखियां रौ षिकार कदी करयौ ई कोनी बल्कै करयौ जदैई नाहरां रौ षिकार ईज करयौ। पंछीड़ा नै चुगावतां महाराजा कान्हड़ देव री दीठ अलघै सूं आवतोड़ी महाराणी जैतलदे माथै पड़ी।”² स्पष्ट है कि पश्चिमी राजस्थान की रेतीली धरा पर भी प्राचीनकाल से ही पक्षी—प्रेम की उदात्त भावना प्रचलित रही है और राजस्थान के गांवों—ढाणियों में आज भी अनेक बड़े—बुजुर्ग इस महत्त्वपूर्ण पक्षीप्रेमी परंपरा को निभा रहे हैं। गांवों में पक्षियों के लिए ऊँचे—चौड़े चबूतरे और अनाज के कोठार विद्यमान हैं। भावी गांव वीकारत कबूतरों के लिए पीढ़ियों से खेत के खेत ही आरक्षित किए गए हैं।

Corresponding Author :

डॉ. राकेश रामावत

वरिष्ठ शिक्षक (अंग्रेजी),

रा.उ.मा.वि. पडासला कला, बिलाड़ा (जोधपुर)

विभिन्न उपन्यासकारों ने पक्षियों से संबंधित जानकारीयां इस रूप में प्रस्तुत की हैं कि हमारी बाल-पीढ़ी उससे संस्कार सीख सके। आदिवासी केंद्रित 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में राकेश कुमार सिंह एक बालक सोनारा की जिज्ञासा का चित्रण करते हैं—

“घर लौटने पर सोनारा की खुशी दोगुनी हो गयी। शहतूत के वृक्ष पर बने घोंसले में पुण्डकी (चिड़िया) ने तीन अण्डे दिए थे। सोनारा पेड़ पर चढ़कर अण्डे देख चुका था। भाई ने कहा था, अण्डों को छूना नहीं, खराब हो जाएंगे। सोनारा रोज बस अण्डों को देखकर पेड़ से उतर जाता था।”³ इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में भी लोकधारणाओं का निरूपण हुआ है जिसके कारण पक्षी-समाज के प्रति बालकों में करुणा-भाव बना रह सके।

अनेक उपन्यासों में पक्षियों के सीनीय नामों का व्युत्पत्तिपरक ब्यौरा भी दे दिया गया है। जिस प्रकार जायसी ने 'पदमावत' (1540 ई.) में विभिन्न पक्षियों की आवाज का भी अंशतः लिप्यांतर करते हुए अपनी पद्य-रचना की, वैसे ही आधुनिक उपन्यासकारों ने भी किंचित् सार्थक प्रयत्न किए हैं। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में लिखा है—“चुह-चुह-चुहक... .. चुहक चुह-चुह.....!” चुहचुहिया बोली। भोर की चिड़िया-चुहचुहिया। फूल सुंघी चिरई जैसी आकृति। चुहचुहिया की बोली सुनकर खटिया छोड़ते हैं बूढ़े।”⁴ इसी प्रकार अनेक लेखकों ने पक्षियों के देशज नामकरण की भाशा वैज्ञानिक ढंग से सहजशोधगम्य जानकारीयां प्रस्तुत की।

राजेन्द्र अवस्थी के तीन उपन्यासों 'सूरज किरन की छाँव' (1959), 'जंगल के फूल' (1960) एवं 'जाने कितनी आँखें' (1969) की समालोचना करते हुए 'उपन्यास-इतिहासकार-समीक्षक' प्रो. (डॉ.) गोपाल राय लिखते हैं—“पक्षियों की बोलियों, बादलों की गड़गड़ाहट और वर्षा की बौछारों के ध्वन्यकन में 'मैला आंचल' का अनुकरण साफ तौर पर दिखायी देता है।”⁵ स्पष्ट है कि ऐसे उपन्यासकारों ने जाने अनजाने ही 'बर्डवाचिंग' (पंछी निहारन) के स्वानुभूत ज्ञान को लिपिबद्ध करते हुए पक्षी वैज्ञानिक दृष्टि का भी परिचय दे दिया है। विभिन्न उपन्यासों में पक्षियों के अंधाधुंध शिकार के कारण उनकी प्रजाति की घटती हुई आबादी और विलोपन के खतरे की ओर भी संकेत किया गया है। 'बस्तर-बस्तर' उपन्यास वीकारयक रगधू अपनी प्रेयसी इरमा को कहता है—“पहाड़ी मैना, जो तोते की तरह बोलती है, यहीं पाई जाती है।” अन्यत्र वह बताती है कि — “मैंने आज तक एक भी पहाड़ी मैना नहीं देखी, रगधू” इरमा ने दुख प्रकट किया। “असल वीकार लोग देर से पैदा हुए और तब तक सारी मैना यहां से उड़ गई। जिसने ज्यादा साहस दिखाया, नहीं भागी, यहां के लोगों ने उसे पकड़ा, बेचा, मारा या खा गये।”⁶ पहाड़ी मैना के पलायन एवं संघर्ष के पीछे लेखक ने आदिवासी संघर्ष एवं विस्थापन की पीड़ा को ध्वनित किया वीकारयक, केंद्रित विभिन्न उपन्यासों में पारिवारिक-सामाजिक कार्य[मों के दौरान मुर्गे या बतख और कबूतर की बलि चढ़ाए जाने के उल्लेख मिलते हैं। कतिपय उपन्यासों में प्रस्तुत लोकगीतों की कड़ियों वीकारयक सीनीय पक्षियों के प्रति जनता की गहरी अनुरक्ति के मार्मिक चित्रण मिलते हैं। इसी प्रकार संवादों में भी सीनीय पक्षियों के विवरण पाए जाते हैं।

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में पौराणिक-धार्मिक मान्यताओं के अनुसार कहीं-कहीं पक्षियों के रूप में पुनर्जन्म की अवधारणा पर दो-चार गद्यांश (पैराग्राफ) मिलते हैं। डॉ. महेन्द्र शर्मा 'सूर्य' ने अपने पैतृक गांव देवसर को आदर्श गांव के रूप में चित्रित करते हुए 'देवसर' उपन्यास की रचना की जिसमें पूरा एक अध्याय ही पुनर्जन्म के रूप में पक्षी की मानवीय बोली पर आधारित है। इस उपन्यास में पुराणों में उल्लिखित काकभुषुण्डि महाराज का उल्लेख है—“कल से हम रामायण की कथा प्रारंभ करेंगे, जो एक समय श्री काकभुषुण्डि जी ने मुनि याज्ञवल्क्य को सुनाई थी।”⁷ उपन्यासकार ने मूल कथावस्तु के अंतर्गत गांव के प्रतिष्ठित सज्जन पुरुष सरपंच ठाकुर साहब के पुत्र महावीर द्वारा कुकृत्य की घटना पर गंभीर बहस के तौर पर 'पक्षी-सभा' का काल्पनिक उदाहरण प्रयुक्त किया है। यहां कल्पना की उड़ान पक्षी-समाज में निष्पक्ष लोकतांत्रिक न्याय व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करती हैं द्रष्टव्य है —

“जाग रहे थे तो केवल त्रिवेणी के वृक्ष पर बैठे कुछ पक्षीगण। अखाड़ा लगा था तोता रूपी दादा शिवशम्भु का। कई प्रमुख-प्रमुख पक्षीगण उनके चारों ओर टहनियों पर बैठे हुए थे। ऐसा लगता था जैसे यह कोई पक्षियों की महान् पंचायत यहाँ एकत्र हुई हो।

प्रथम प्रश्न मादा पक्षियों की ओर से मैना यानि फिरोजा ने उठाया और पूछने लगी— “आखिर इस गाँव में अब कैसे-कैसे अनर्थ होने लगे हैं? कोई रोकने-टोकने वाला यहाँ रहा भी है, अथवा नहीं?”⁸ स्त्री विमर्ष की दृष्टि से लेखक ने यहां विहग-वर्णन का सटीकतम उपयोग किया है।

उल्लेखनीय है कि इस शर्मनाक घटना को कबूतर और कौए ने देखा था और इस पक्षी पंचायत में उन्होंने निर्भीकतापूर्वक सूचना दी। फलस्वरूप दो निरीह बच्चों को महावीर के चंगुल से बचाया जा सका।⁹ यह उदाहरण हमें सामाजिक विसंगतियों के प्रति निर्भीक होकर आगे आने के लिए प्रेरणा देता है।

पक्षी पंचायत में विभिन्न विशयों पर सर्वसम्मति को महत्त्व दिया जाता है। “दादा शिवशम्भु अपनी तोते वाली जवान में बोले— “देखो भाई आज से कुछ ऐसा करो कि।”

“क्या करें दादा-कुछ बताओ तो?” “सभी पक्षियों ने तुरन्त स्वीकारते हुए पूछा तब दादा बोले—“आज से सभी पक्षी निरामिश-भोगी बने अर्थात् माँस का भक्षण बिलकुल बन्द कर दे और अनाज, फूल-पत्तियाँ अथवा फल खाकर ही स्वयं को जिन्दा रखे। इससे हमारी बुद्धि निर्मल होकर सात्विकता को प्राप्त होगी। अच्छी बातें हमें पीघ्रता से समझ में आ जाया करेंगी, बोलो मंजूर है?”

“हमें मंजूर है, हम माँस भक्षण नहीं करेंगे।” सभी पक्षियों ने स्वीकारोक्ति भरे स्वर में कहा।”¹⁰ इस प्रकार यहां लेखक ने पक्षियों के प्रतीक से सनातन परंपरा एवं शाकाहार के वैज्ञानिक महत्त्व पर प्रकाश डाला है।

इसी प्रकार अन्य हिन्दी उपन्यासों में भी पंछी-जीवन संबंधी प्रकरण उपलब्ध होते हैं। कतिपय उपन्यासों के शीर्षक में ही पक्षी-संदर्भ उभरते हैं यथा रांगेय राघव कृत 'पक्षी और आकाश' (1957), किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती वा वन विहंगिनी' (1906), रामचीजसिंह कृत 'वनविहंगिनी', प्याम परमार कृत 'मोरझला' (1963), हिमांशु जोषी कृत

‘कबूतरखाना’ (1959), उशा यादव कृत ‘जंगल में मोर नाचा’ और कितने नीलकण्ठ’ (1998), डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल कृत ‘बया का घोंसला और सांप’ एवं सूर्यबाला कृत ‘अग्निपंखी’ आदि।

कमलेश्वर कृत ‘अनबीता व्यतीत’ उपन्यास में आजादी के उपरांत रियासती ठिकानों द्वारा की जाने वाली परिदफरोषी (पंछियों को पकड़कर पालतू रूप में बेचना) और पक्षी-मांस व्यापार के अवैध करोबार पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। यह उपन्यास पक्षीसंरक्षण की नितांत आवश्यकता को रेखांकित करते हुए पर्यावरण-विमर्ष के फलक पर प्रथम पक्षी केंद्रित हिंदी उपन्यास के रूप में संग्रहणीय कृति बन गया है। उल्लेखनीय है कि हिन्दी पट्टी से निकलकर अमेरिका में प्रवासी लेखिका डॉ. अनिता देसाई ने अंग्रेजी में ‘‘क्राइ, दा पीक्रॉक’’ उपन्यास लिखा जो कि खूब चर्चित रहा है।

निष्कर्ष – आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में यथास्थान कथावस्तु, पात्रयोजना, कथोपकथन (संवाद), देशकाल चित्रण और भाषा शिल्प में विविध प्रकार से पक्षियों से संबंधित अत्यंत ही रोचक विवरणों का सीन प्रदान किया है। इन पक्षी-प्रसंगों को केवल साहित्यिक प्रयोजन से उपन्यास के कलेवर-विस्तार के निमित्त उपयोग में नहीं लिया गया है बल्कि लेखकों ने समकालीन प्रश्नों पर विचार भी किया है। समकालीन विमर्श के दौर में इन पक्षी-प्रसंगों की बहुआयामी महत्ता को रेखांकित किया जाना अभी शोधक्षेत्र में बाकी है।

हिन्दी उपन्यासों में विहग-वर्णन की समकालीन प्रसंगिकता पर शोध किए जाने की प्रचुर संभावनाएँ हैं।

संदर्भ –

1. हिन्दी साहित्य, डॉ. विवेक शंकर, पृ. 259–268
2. शहजादी फीरोजा (मूल हिन्दी) पुरुषोत्तम पौमल,(राजस्थानी अनुवाद), राकेश रामावत, पंकज पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2016, पृ. 126
3. पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 242
4. वही, पृ. 44
5. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्रोफेसर गोपालराय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010, पृ. 270–271
6. बस्तर बस्तर (उपन्यास) लोकबाबू राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, प्र.सं 2021, पृ. 141
7. देवसर (उपन्यास), महेन्द्र शर्मा, सूर्यप्रभा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृ. 101
8. वही, पृ. 99
9. वही, पृ. 100
10. वही, पृ. 101

•